## अगर मैं स्वयं को जोशी, परसाई का मानसपुत्र समझता हूँ तो मेरा दायित्व है कि उनके कार्य को विस्तार दूँ (ज्ञान चतुर्वेदी)

(कुशल चिकित्सक, लब्ध प्रतिष्ठित व्यंग्यकार, सफल साहित्यकार, ज्ञान चतुर्वेदी जी चौथी कक्षा से ही कविता का पठन – पठन करते थे और उनकी गहरी समझ भी रखते थे। पद्म श्री, व्यास सम्मान आदि पुरस्कारों से सम्मानित लेखक ज्ञान चतुर्वेदी का लेखन संसार जितना वैविध्यपूर्ण और रोचक है उसके पीछे की कथा भी उतनी प्रेरक और वंदनीय है। प्रस्तुत है लेखक के साथ ऑनलाइन, ज़ूम मीटिंग द्वारा हुये वार्तालाप के महत्वपूर्ण अंश।)

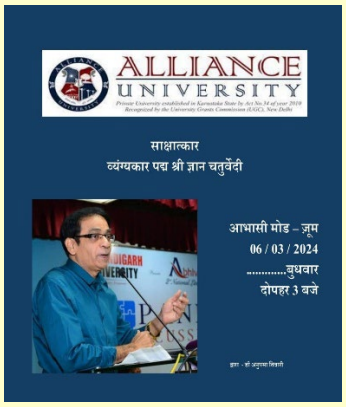


**अनुपमा तिवारी : आपकी पहली रचना किस विधा में थी और लिखने के उपरांत सर्वप्रथम आपने किसके साथ साझा किया और उनकी क्या प्रतिक्रिया अथवा सुझाव आपको मिला ?**

**ज्ञान चतुर्वेदी :** भांडेर एक जगह है जहाँ से मैंने अपने स्कूली पढ़ाई की और छठवीं कक्षा में मैंने पहली रचना की। मेरे नाना जी ओरछा के राष्ट्रकवि थे। मैंने उनकी पांडुलिपियाँ, तीसरी और चौथी कक्षा से ही पढ़ना शुरू कर दी थीं। उनसे बहुत प्रभावित था और उसी के कारण पहले रुझान कविता की ओर अधिक रहा। छोटा था। तीसरी कक्षा का विद्यार्थी एक गूढ कविता कैसे और कितना समझ सकता है, आप सोच ही सकती हैं पर मैं समझता था और उसी के नकल में कुछ कवितायें लिखना शुरू की थीं। बस कोशिश थी पर बात नहीं बन पाती थी क्योंकि वे कवितायें दोहे, सवइए, सोरठा आदि में होती थीं जो बहुत अधिक मेरे समझ में नहीं आती थीं। फिर छठवीं कक्षा में मैंने मैथिली शरण गुप्त को पढ़ा और बहुत सीख मिली उससे। खड़ी बोली में कैसे कविता का सृजन किया जाए, क्या बारीकियाँ होनी चाहिए आदि यह सब मैंने 'पंचवटी' से सीखा। ग्रामीण परिवेश को लेकर तुकबंदी वाली कविता लिखी और उसके बाद दैनिक जागरण अखबार में बच्चों की रचनायें छपने का जो कॉलम होता है उसमें मेरी कविता छपी। तब तक मैंने एक उपन्यास भी लिख लिया था। मेरी माँ जो नरोत्तम पाण्डेय की बहन थीं, वे खुद साहित्य की गहरी समझ रखती थीं। मुझसे कहतीं कि "मैं तुममें नरोत्तम को देखती हूँ।" तो मेरी माँ, मेरे लिखे हुये को बहुत सहेज कर रखती थीं, उसे पढ़ती थीं और छठवीं कक्षा के छात्र की व्याकरणिक त्रुटियों को भी सुधारतीं और सिखाती थीं। माँ मेरी पहली पाठिका थीं। इस प्रकार तकरीबन सात से आठ कवितायें लिखीं और उसके बाद पद्य से गद्य में आया। ग्यारहवीं कक्षा में ही तीन सौ पृष्ठों के जासूसी उपन्यास भी लिखे। फिर कहानियाँ लिखीं , शायरी भी करने लगा , जिसमें उपनाम भी दे दिया था – ज्ञान चतुर्वेदी 'मुफ़लिश'। कई मुशायरों और मंचों पर भी कविता पाठ किया परंतु धीरे – धीरे मन उचटने लगा। अगर किसी विधा की ओर से आपका मन उचटने लगे तो अवश्य यह समझ जाना चाहिए कि यह आपकी विधा नहीं है बस आप किसी दूसरेको देखकर घुस तो गए हैं पर न्याय नहीं हो पा रहा है। उसके बाद मैंने परसाई जी को पढ़ा, जोशी जी को पढ़ा तब लगा कि मैं शायद यह कहना चाहता हूँ। और तब मैंने व्यंग्य लिखना शुरू किया और 1971 में पहली बार धर्मयुग में छपा। धर्मयुग में छपने की प्रसन्नता अद्भुत थी।

**अनुपमा तिवारी : आपने कविता, कहानी, उपन्यास, शायरी सब विधाओं पर कलाम चलायी है परंतु पहचान व्यंग्य ने दिलाई है। क्या लगता है कि अन्य विधाओं में कहाँ ताल – मेल नहीं बैठ रहा था या यूं कहें कि लेखन में ऐसा क्या छूट रहा था जिसे व्यंग्य ने पूर्ण किया और आपको आत्मतुष्टि हुयी कि हाँ मैं व्यंग्य के लिए ही हूँ ।**

**ज्ञान चतुर्वेदी** : देखिये फिजिक्स में पानी का एक सिद्धान्त है कि – अगर पानी को आप मुक्त छोड़ेंगे तो अपना तल वह स्वयं खोज लेता है। उसे बहने भर दीजिये। अगर मैं कविता तक ही रुक गया होता तो कवितायें अच्छी कर लेता परंतु मैं वह न होता जिसकी संभावनाएं मुझमें हैं। मन की आँखें खुली रखनी चाहिए। मन जो कहे कहे उसी के अनुरूप अगर स्वच्छंद हो कर चलते रहेंगे तो आप उस परम आनंद का पूरा सुख ले सकेंगे कि कितना मजा आ रहा है और यह अति महत्वपूर्ण है कि आपको मजा आना चाहिए तभी आप किसी कार्य के साथ पूर्णत: न्याय कर पाएंगे। हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने भावोप्रवेश की कला की बात कही थी। उसी तरह जब मैं लिखता हूँ भले ही एक ही अनुच्छेद क्यों न हों, मैं पूर्णत: उसमें रम जाता हूँ, प्रवेश कर जाता हूँ। अपने पात्रों की स्थिति को आभास करता हूँ। **'बारामासी'** की एक स्त्री पात्र है जो अपने विवाह को लेकर चिंतित रहती है और विवाह ही उसका मुख्य ध्येय है। तो उसके संदर्भ में एक स्थापित लेखिका ने मुझसे कहा कि – आखिर आप एक स्त्री के मन की विवशता, उसकी कुंठा, उसकी तड़प को कैसे समझ पाये? मैंने उनको बताया कि मैंने भावप्रवेश किया। जब तक अपने पात्रों का अभिनय मन में हम हम खुद नहीं करेंगे, उनसे एकाकार नहीं होंगे तब तक उसमें वह निखार नहीं आएगा जो आप पाठकों को देना या दिखाना चाहते हैं। अगर आप उपन्यास लिख रहे हैं और उसमें सात पात्र हैं, तो यह लेखक का धर्म होता है कि आप उन सातों पात्रों में प्रवेश कीजिये, एक ही समय में या अलग – अलग समय में। तब आप सार्थक न्याय कर पाएंगे। आपके मन में जो है अगर उसे उसी तरीके से नहीं दर्शा पाएंगे तो वह प्रभावी न बन सकेगा।

किसी भी पक्ष को देखने के कई कोण होते हैं। उसीके बिन्दु में कविता लिखी जाती है, एक कहानी भी बुनी जाती है, जासूसी संदर्भ लिखे जाते हैं और व्यंग्य भी लिखा जाता है कि आखिर यह घटना क्यों घटी ? तो यह देखने वाले के दृष्टि पर है कि आखिर आपकी निगाह में क्या है, आपकी वैचारिकता किस विधा और भाव में अभिव्यक्ति पाने के लिए आतुर है इसके कई दुष्परिणाम भी हुये हैं। कई ऐसे प्रतिभावान लोग हैं जो मात्र कविता में ही सिमटे रह गए आगे देखा ही नहीं। बेशक वे अच्छी कवितायें लिखते हैं परंतु वे कबीर या निराला नहीं बन पाएंगे।

**अनुपमा तिवारी : व्यंग्य पढ़ने में जितना आनंद आता है उसे गढ़ने में उतनी ही जटिलता है। व्यंग्य लिखना सरल नहीं है। आपको क्या लगता है कि व्यंग्य की चुनौतियाँ भी हैं, अगर हाँ तो किस प्रकार की चुनौतियाँ आप पाते हैं ?**

**ज्ञान चतुर्वेदी :** आप याद रखिए कि न केवल हिन्दी भाषा अपितु विश्व की सारी भाषाओं में व्यंग्यकार बहुत कम हुये हैं। अङ्ग्रेज़ी या विदेशी भाषाओं की बात करें तो जैरॉम एक हास्यकार थे। टी जी बोर्ड हाउस ने बहुत अच्छा ह्यूमर लिखा है। जोसेफ हैलर ने – कैश 22 लिखा है जो व्यंग्य में लिखा हुआ है और उन्हें विशेष पहचान मिली है। विशुद्ध व्यंग्यकार किसी भी भाषा में सिवाय उर्दू को छोड़कर क्योंकि उर्दू में जबर्दस्त व्यंग्यकार हुये हैं, बहुत कम कम व्यंग्यकार हुये हैं। हिन्दी की बात करें तो परसाई के जमाने में परसाई थे, शरद जोशी थे, श्रीलाल शुक्ल थे, के पी सक्सेना थे, लतीफ़ घोंघी थे, रवीन्द्र नाथ त्यागी थे। एक ही समय में बहुत सारे लोग व्यंग्य लिख रहे थे और सब एक से बढ़कर एक लिख रहे थे। अन्यथा व्यंग्यकार मुख्यत: किसी भी दौर में एक या दो ही हुये हैं वह भी पूर्ण व्यंग्यकार नहीं। व्यंग्य एक कठिन विधा है और इसे साधना बहुत कठिन है। अपनी बात को व्यंग्य में कहना और उसे व्यंग्य में ही कहते चले जाना वह भी फुटकर व्यंग्य नहीं जो एक या दो पृष्ठों का हो बल्कि तीन सौ चार सौ पृष्ठों का उपन्यास और उसके पात्रों के अलग अलग चरित्र के माध्यम से उन्हें व्यंग्य में ढालना बहुत मुश्किल है, पर हमने किया है। ध्यान

देने योग्य यह भी है कि व्यंग्य सायास नहीं किया जाता वह हमारे स्वभाव में होता है। आजकल की बात करें तो हिन्दी में मेरे समकालीन बहुत से लोग व्यंग्य लिख रहे हैं, मात्र इसलिए कि इसमें भीड़ अभी कम है और जल्द ही छप जाते हैं परंतु उनके स्वभाव में व्यंग्य नहीं है। व्यंग्य का पागलपन जब तक आपमें नहीं है आप व्यंग्यकर नहीं हो सकते। व्यंग्य लिखना जटिल है। बहुत से बड़े बड़े साहित्यकारों ने भी अपने उपन्यास, कविता या कहानी में व्यंग्य का पुट देने का प्रयत्न किए परंतु दो या चार पंक्ति लिखने के बाद आप हाँफने लग जाते हैं। कलम आगे नहीं बढ़ पाती है। पर मैं ईश्वर का आभारी हूँ कि कुछ विशेष उन्होने मुझे दिया है और जो दिया है उसे मैंने बहुत तराशा भी है। बहुत मेहनत की है। अभी एक फिल्म का स्क्रिप्ट लिख रहा हूँ। पिछले दो महीनों से मेरी दिनचर्या अस्पताल जाना और घर आकर लिखने बैठ जाना है। सात से आठ घंटे हरदिन लिख रहा हूँ। जो विधा लिखकर आपको तृप्ति के भाव मिले वह आपकी विधा है।

**अनुपमा तिवारी : अब उस उपन्यास की बात करेंगे जिस पर आपको व्यास सम्मान मिला है, अर्थात – 'पागलखाना'। जिज्ञासा है कि – बाजारवाद का उत्थान और समाजवाद के पतन का जो सिलसिला चल रहा है उसमें साहित्य, जिसकी पोषक स्वयं माँ शारदा हैं क्या उसे भी बाजारवाद के आकर्षण से प्रभावित मानते हैं ?**

**ज्ञान चतुर्वेदी :** जब आपके क्षेत्र, आपका लोकगीत, आपका लोक संस्कार, आपकी अभिनय क्षमता, आपकी प्रस्तुति, आपके निर्णय और सोच – विचार की क्षमता, आपके सम्बन्धों की प्राथमिकता सबमें बाजारवाद है तो साहित्य कैसे छूट सकता है ? । आज की तारीख में यदि मैं आपसे प्रेम करता हूँ और वैलेंटाइन डे पर आपको कार्ड नहीं दिया, गुलाब नहीं दिया तब आपका प्रेम दो कौड़ी का है, कोई महत्व ही नहीं है उस प्रेम का। अब आप देखिये कि आपके प्रेम की अभिव्यक्ति बाजार ने तय कर दी। प्रेम आपके जीवन का बुनियादी भाव है और बड़ी खूबसूरती से बाजार ने उस पर कब्जा जमा लिया है। आजकल मदर्स डे , फादर्स डे का प्रचलन खूब ज़ोरों पर है। अगर आपने कोई उपहार या भेंट न दी तो उनके मन में भी यह भाव आते हैं कि कुछ मिला नहीं। बाजारवाद की बुनियादी विशेषता यह है कि वह कुछ भी ग्राहक को बेच सकता है। उसके पास कला है। बाजारवाद के पास धर्म का भी बाजार है और बहुत बड़ा बाजार है। मार्केट शब्द फैशन है आज का। इस उपन्यास में छ पागल पात्र इकट्ठे किए हैं। इनमें से एक पागल सुरंग खोदता है और भाग जाता है। वह सुरंग खुलता कहाँ है – एक मंदिर में। बाजार ने समूचे मानव जाति को एक कंज़्यूमर में बदल दिया और मानव से संबन्धित जितने भी मानवीय मूल्य थे उनको कंज़्यूमर आइटम में बदल दिया , इस स्थिति में दुनिया में क्या बचा और क्या बचेगा। यह पागलों की दुनिया हो जाएगी जो बस भागता ही जा रहा है और उस भागने के खिलाफ अगर कोई बोलता है तो सबसे बड़ा पागल है। बाजार मानव के लिए जरूरी है पर बाजारवाद जरूरी नहीं है। यह उपन्यास उसी के खिलाफ है।

**अनुपमा तिवारी : आपकी एक कहानी है – 'रामबाबू का बसंत'। वर्तमान समय की शिक्षा व्यवस्था, धनोपार्जन की प्राथमिकता, अभाव में स्वभाव के परिवर्तन की मानसिकता एक साथ कई गंभीर मुद्दों को आपने मात्र दो पृष्ठों में समेटा है जो कि अद्भुत और लेखकीय कौशल है। विद्यार्थी जीवन में पढ़ाये गए कोर्स व्यावहारिक जीवन में कितना महत्व रखते हैं ?**

**ज्ञान चतुर्वेदी :** हमारे यहाँ सिखाने की प्रक्रिया अधिक है और सीखने की कम और सिखाना भी बहुधा सतही नहीं होता है। आप देखिये कि ज्ञान की बातें तो हम खूब करते हैं परंतु घर में ही कितना झूठ बोलते हैं ? छोटी छोटी बातों को हम स्वीकारने में हिचकते हैं, संबंधियों से पीछा छुड़ाने में हम अव्वल हैं, माध्यम झूठ ही है। संस्कार के दो पक्ष एक साथ व्यवहृत होते हैं छात्र जीवन में एक तो स्कूली शिक्षा का पारंपरिक ज्ञान और दूसरा घर और समाज में घटित यथार्थ बातें। सैद्धांतिकी से अधिक महत्व व्यावहारिक ज्ञान का होता है जिसे हम सब अनुभव के नाम से भी जानते हैं। बच्चे या छात्र अपने अगल बगल से जो भी आचार – व्यवहार देखते हैं, उसे रोचकता से ग्रहण करते हैं और खुद अपना निष्कर्ष बना लेते हैं कि – स्कूली अध्ययन सामान्य ज्ञान ही है। यह एक पक्ष है, इसी का दूसरा पक्ष यह है कि जब हम शिक्षा जगत को पार कर समाज में स्वयं को स्थापित करने और संघर्ष के

लिए उतरते हैं तो बड़ी चुनौतियाँ होती हैं। ध्यान रहे कि स्कूली ज्ञान और नैतिकता की बातें यहाँ हमारा मनोबल बढ़ाती हैं और प्रतिकूल समय को भी अनुकूल बनाने में सहायक होती हैं। उस समय की सीखी हुयी बातें , दिशा भ्रमित होने, निर्णय लेने, सही – गलत में अंतर पहचानने में हमारी मदद करती हैं। उनमें नैतिकता का बीज पड़ जाता है। आगे वे विकसित हों या न हों, लहलहायें या न लहलहायें बीज तो उनमें है ही। तब संकट की घड़ी, उदासीन समय, किसी द्वारा छले जाने पर, किसी निकट संबंधी द्वारा धोखा खाने पर बचपन में सीखे पाठ और नैतिक जानकारी बहुत बड़ी संबल बनती हैं। वो आपको कहीं न कहीं काम आएंगे ही। कह सकती हैं कि विद्यार्थी जीवन के कोर्स बहुत ही उपयोगी होते हैं। दूसरा प्रश्न आपका मेडिकल के संदर्भ में था। मैं बताना चाहता हूँ कि मैं एक टीचर भी हूँ। मेडिकल के छात्रों को पढ़ाता हूँ जो पोस्ट ग्रेजुएशन के छात्र हैं जो डीएनबी कहलाता है। यह एम डी मेडिसीन के समकक्ष है। साठ – सत्तर छात्र समूचे भारत में हैं मेरे जो कार्य कर रहे हैं। मैं अपने उन बच्चों को एक चीज जरूर सिखाता था कि आपने ज्ञान कितना सीखा कितना समझ में आया, इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है – उस ज्ञान का विस्तार और प्रयोग आप ठीक से कर पाये या नहीं ? आपने मोटी – मोटी किताबें पढ़ लीं। खांसी के दस अलग अलग लक्षण पढ़ लिए लेकिन अगर मरीज आपके पास आया और सही समय पर आप सोच ही नहीं पाये कि मरीज के लिए एक भी सही कारण आप नहीं पहचान पाये तो वह पढ़ाई खतरनाक है। हमारे शिक्षा व्यवस्था की सबसे बड़ी समस्या यह है कि हम अप्लीकेशन और नॉलेज पर ज़ोर ही नहीं देते। रटने पर जोड़ देते हैं। डॉक्टरी बहुत ही अलग पढ़ाई मैं इसलिए भी मानता हूँ कि यह आर्ट और साइंस एवं मानवता का मिश्रण है। अब मैंने मलेरिया के लिए जान लिया, टाइफाइड के बारे में पढ़ लिया, हार्ट अटैक के बारे में भी जान गया परंतु जब मरीज आया तो हार्ट अटैक के लिए एक ही इलाज सभी मरीजों के लिए कर रहे हैं। हमें यह जानना आवश्यक है कि जिस प्रकार हर तरह के व्यक्ति हैं उसी प्रकार हर तरह के रोग भी हैं। हार्ट अटैक के लिए जो एक दवा आपने एक मरीज को दी वही सेम दवा आप दूसरे मरीज को नहीं दे सकते हैं। एक आदमी इंजक्सन से डरता है तो एक आदमी मेडिकल के बड़े – बड़े मशीनों से ही बहुत जल्दी घबराता है । ऐसे में आप सभी मरीजों पर एक प्रिंसीपल लागू करेंगे तो आप कभी सफल डॉक्टर नहीं बन पाएंगे। आपको मरीज को समझना पड़ता है, उसकी आत्मा में उतरना पड़ता है, ठीक वैसे ही जैसे साहित्यकार अपने लेखन में उतरता है। इसीलिए एक डॉक्टर बहुत अच्छा लेखक हो सकता है, पर सभी लेखक डॉक्टर नहीं हो सकते। आप अपनी संवेदना के द्वारा सफल डॉक्टर और लेखक दोनों बन सकते हैं।

**अनुपमा तिवारी : आपको यह कहा जाता है कि आप परसाई, श्रीलाल शुक्ल और शरद जोशी की परंपरा का विस्तार कर रहे हैं। इसे आप किस रूप में स्वीकारते हैं ?**

**ज्ञान चतुर्वेदी :** मैं इसे सहर्ष और गौरव के साथ स्वीकारता हूँ। देखिये जिस प्रकार आपके परिवार की एक परंपरा होती है और अपने पिता के काम को आप आगे बढ़ाते हैं अर्थात जो भी आपने उनसे सीखा है, अनुभव किया है, उनके साथ समय बिताया है बेशक आप उससे बहुत कुछ सीखते हैं और अपने आचरण में उतारते हैं और उसे नूतन साज – संवार के साथ आगे ले जाते हैं। मैं समझता हूँ कि मेरे साथ भी वही है। परसाई को जोशी जी को मैंने पढ़ा, उन्होने व्यंग्य की विधा का परिचय दिया, पर नए समय कि चुनौतियाँ जो परसाई के समय में नहीं थीं , समाज में जो और बिखराव आया उसे आप परसाई की दृष्टि से समझकर अपने हिसाब से एक नई चीज तैयार करते हैं तो विस्तार ही तो हुआ। मैं बार बार कहता हूँ कि हमारे कद में हमारे पूर्वजों का कद भी शामिल है, आप अपने कद पर इठलाइए मत। अगर आप बड़े लेखक बन गए हैं तो मिथ्याभिमान न कीजिये क्योंकि बड़े बनने के लिए पहले आप अपने पूर्वजों अर्थात पहले के साहित्यकारों को पढ़ा है, गुना है तब निखरे हैं। परसाई, जोशी, शुक्ल जी, रेणु जी का बहुत सहारा है आपके नीचे तब जाकर आपका कद ऊंचा होता है। ऐसे साहित्यकारों के हम कार्बन कॉपी नहीं बनते अपितु उनके कार्य को आगे बढ़ाते हैं। अगर मैं खुद को उन साहित्यकारों का मानस पुत्र समझता हूँ तो मेरा कार्य और दायित्व है कि उनके काम को विस्तार दूँ।